अध्याय 4

सामाजिक न्याय

परिचय

प्रेम के बहुत से रंग होते हैं और उनकी व्याख्या कर पाना आसान नहीं। फिर भी हम अपनी अंतर्दृष्टि से यह समझ लेते हैं कि प्रेम का क्या मतलब है। उसी तरह न्याय के बारे में भी हमारी एक सहजानुभूत समझ होती है, हालाँकि हो सकता है कि हम इसकी ठीक-ठीक परिभाषा नहीं दे सकें। इस मायने में न्याय भी बहुत हद तक प्रेम जैसा है। इसके अतिरिक्त प्रेम और न्याय, दोनों अपने समर्थकों में भावप्रवण अनुक्रियाएँ पैदा करते हैं। और जैसे प्रेम को, वैसे ही न्याय को भी कोई बुरा नहीं कहता है। प्रत्येक इन्सान अपने लिए और कुछ हद तक बाकियों के लिए भी न्याय चाहता है। लेकिन प्रेम और न्याय में एक अंतर भी है। प्रेम उन लोगों से हमारे रिश्तों का एक पहलू है, जिन्हें हम अच्छी तरह जानते हैं। जबकि, न्याय का सरोकार समाज में हमारे जीवन और सार्वजनिक जीवन को व्यवस्थित करने के नियमों और तरीकों से होता है, जिनके द्वारा समाज के विभिन्न सदस्यों के बीच सामाजिक लाभ और सामाजिक कर्त्तव्यों का बंटवारा किया जाता है। इसीलिए, न्याय के प्रश्न राजनीति का लिए केंद्रीय महत्त्व की चीज है।

इस अध्याय को पढ़ने के बाद आप सामाजिक न्याय की अवधारणा से जुड़े निम्न मुद्दों को समझने में सक्षम होंगे—

- आप न्याय के उन सिद्धांतों को पहचान सकेंगे, जो अलग-अलग समाजों और अलग-अलग समय में सामने रखे गए।
- आप समझ पाएँगे कि वितरणात्मक न्याय का क्या अर्थ है।
- हम रॉल्स के इस तर्क की चर्चा करेंगे कि निष्पक्ष और न्यायपरक समाज सभी सदस्यों के हित में होता है और इसे तार्किक आधार पर सिद्ध किया जा सकता है।

सामाजिक न्याय

सामाजिक न्याय

न्याय क्या है?

तमाम संस्कृतियों और परंपराओं को न्याय के प्रश्न से जूझना पड़ा है, भले ही उन्होंने इस अवधारणा की व्याख्या भिन्न-भिन्न तरीकों से की हो। उदाहरण के लिए, प्राचीन भारतीय समाज में न्याय **धर्म** के साथ जुड़ा था और धर्म या न्यायोचित सामाजिक व्यवस्था कायम रखना राजा का प्राथमिक कर्त्तव्य माना जाता था। चीन के दार्शनिक कन्फ्यूशस का तर्क था कि गलत करने वालों को दंडित कर और भले लोगों को पुरस्कृत कर राजा को न्याय कायम रखना चाहिए। ईसा पूर्व चौथी सदी के एथेंस (यूनान) में प्लेटो ने अपनी पुस्तक **द रिपब्लिक** में न्याय के मुद्दों पर चर्चा की है। सुकरात और उनके युवा मित्रों, ग्लाउकॉन और एडीमंटस के बीच लंबी वार्ता के जरिए प्लेटो ने दिखाया कि हमारा न्याय से सरोकार होना चाहिए। उन नौजवानों ने सुकरात से पूछा कि हमें न्यायसंगत क्यों होना चाहिए। उनका आकलन यह था, कि जो अन्यायी हैं, वे न्यायी लोगों से ज़्यादा बेहतर स्थिति में हैं। जो अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए कानून तोड़ते-मरोड़ते हैं, कर चुकाने से कतराते हैं और झूठ और धोखाधड़ी का सहारा लेते हैं, वे अक्सर उन लोगों से ज़्यादा सफल होते हें, जो सच्चाई और न्याय के रास्ते पर चलते हैं। आपने आज भी लोगों को ऐसी भावना व्यक्त करते सुना होगा।

सुकरात ने उन नौजवानों को याद दिलाया कि यदि हर कोई अन्यायी हो जाए, यदि हर आदमी अपने स्वार्थ के लिए कानून के साथ खिलवाड़ करे, तो किसी के लिए भी अन्याय से लाभ पाने की गारंटी नहीं रहेगी, कोई भी सुरक्षित नहीं रहेगा और इससे संभव है, कि सबको नुकसान पहुँचे। इसलिए हमारा दीर्घकालिक हित इसी में है, कि हम कानून का पालन करें और न्यायी बनें। सुकरात ने स्पष्ट किया कि हमें न्याय के अर्थ को स्पष्ट रूप से समझने की ज़रूरत है ताकि हम यह देख सकें कि न्यायसंगत होना क्यों महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने बताया कि न्याय का मतलब सिर्फ यह नहीं होता कि हम अपने मित्रों का भला करें और दुश्मनों का नुकसान करें या अपने हितों के पीछे लगे रहें। न्याय में तमाम लोगों की भलाई निहित रहती है। जैसे एक डॉक्टर अपने सभी मरीजों की भलाई की चिंता करता है, उसी तरह न्यायसंगत शासक या सरकार को भी जनता की भलाई की चिंता करनी होगी। जनता की भलाई की सुनिश्चितता में हर व्यक्ति को उसका वाजिब हिस्सा देना शामिल है।

> वे कहते हैं कि अन्याय करना, स्वभाविक रूप से अच्छा है और दुष्टता झेलना बुरा। लेकिन यह भी कि भलाई की तुलना में दुष्टता बड़ी है। और इसीलिए जब लोग अन्याय करने और झेलने, दोनों का अनुभव प्राप्त करते हैं, जब वे किसी एक से बचने और दूसरे को पाने में सफल नहीं होते, तब वे सोचते हैं कि दोनों में से कुछ भी न होने के लिए आपस में समझौता करना बेहतर होता। यहाँ से कानून और आपसी प्रसंविदाएँ बनती हैं। और जो कुछ कानून के द्वारा किया जाता है, उसे ही कानूनसम्मत और न्यायोचित कहा जाता है।
>
> *सुकरात से ग्लाउकॉन; 'द रिपब्लिक' में*

यह विचार कि न्याय में हर व्यक्ति को उसका वाजिब हिस्सा देना शामिल है, आज भी न्याय की हमारी समझ का महत्त्वपूर्ण अंग बना हुआ है। बहरहाल,

सामाजिक न्याय

प्लेटो के जमाने की तुलना में आज यह समझ ज़रूर बदली है, कि किसी व्यक्ति का प्राप्य क्या है। यानी वह क्या पाने का अधिकारी है। आज न्याय की हमारी समझ इस समझ से गहरे में जुड़ गई है कि मनुष्य होने के नाते हर व्यक्ति का प्राप्य क्या है। जर्मन दार्शनिक इमैनुएल कांट के अनुसार हर मनुष्य की गरिमा होती है। अगर सभी व्यक्तियों की गरिमा स्वीकृत है, तो उनमें से हर एक का प्राप्य यह होगा कि उन्हें अपनी प्रतिभा के विकास और लक्ष्य की पूर्ति के लिए अवसर प्राप्त हो। न्याय के लिए ज़रूरी है कि हम तमाम व्यक्तियों को समुचित और बराबर की अहमियत दें।

समान लोगों के प्रति समान बरताव

हालाँकि आधुनिक समाज में तमाम लोगों को समान महत्त्व देने के बारे में आम सहमति है, लेकिन यह निर्णय करना आसान नहीं कि हर व्यक्ति को उसका प्राप्य कैसे दिया जाए। इस संबंध में कई सिद्धांत पेश किये गए हैं। उनमें से एक है समकक्षों के साथ समान बरताव का सिद्धांत। माना जाता है कि मनुष्य होने के नाते सभी व्यक्तियों में कुछ समान चारित्रिक विशेषताएँ होती हैं। इसीलिए वे समान अधिकार और समान बरताव के अधिकारी हैं। आज अधिकांश उदारवादी जनतंत्रों में कुछ महत्त्वपूर्ण अधिकार दिए गए हैं। इनमें जीवन, स्वतंत्रता और संपत्ति के अधिकार जैसे नागरिक अधिकार शामिल हैं। इसमें समाज के अन्य सदस्यों के साथ समान अवसरों के उपभोग करने का सामाजिक अधिकार और मताधिकार जैसे राजनीतिक अधिकार भी शामिल हैं। ये अधिकार व्यक्तियों को राज प्रक्रियाओं में भागीदार बनाते हैं।

समान अधिकारों के अलावा समकक्षों के साथ समान बरताव के सिद्धांत के लिए ज़रूरी है, कि लोगों के साथ वर्ग, जाति, नस्ल या लिंग के आधार पर भेदभाव न किया जाए। उन्हें उनके काम और कार्यकलापों के आधार पर जाँचा जाना चाहिए, इस आधार पर नहीं कि वे किस समुदाय के सदस्य हैं। इसीलिए, अगर भिन्न जातियों के दो व्यक्ति एक ही काम करते हैं – चाहे वह पत्थर तोड़ने का काम हो या पिज्जा बाँटने का – उन्हें समान पारिश्रमिक मिलना चाहिए। यदि किसी काम के लिए एक व्यक्ति को सौ रुपये और दूसरे व्यक्ति को पिचहत्तर रुपये सिर्फ इसलिए मिलते हैं, क्योंकि वे भिन्न जातियों के हैं, तो यह अनुचित और अन्यायपूर्ण होगा। इसी तरह, यदि स्कूल में पुरुष शिक्षक को महिला शिक्षक से ज़्यादा वेतन मिलता है, तो यह फर्क भी नाज़ायज़ और गलत होगा।

समानुपातिक न्याय

बहरहाल, समान बरताव न्याय का एकमात्र सिद्धांत नहीं है। ऐसी परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिसमें हम महसूस करें कि हर एक के साथ समान बरताव अन्याय होगा। मसलन, अगर आपके स्कूल में यह फ़ैसला किया जाय, कि परीक्षा में शामिल होने वाले तमाम लोगों को बराबर अंक दिए जाएँगे, क्योंकि सब एक ही स्कूल के विद्यार्थी हैं और सबने एक ही परीक्षा दी है, तो आपको कैसा लगेगा? यहाँ आप ज़्यादा यह उचित समझेंगे कि छात्रों को उनकी

सामाजिक न्याय

उत्तर-पुस्तिकाओं की गुणवत्ता और संभव हो तो इसके लिए उनके द्वारा किए गए प्रयास के अनुसार अंक दिए जाएँ। दूसरे शब्दों में, सबके लिए समान अधिकार की दौड़ में एक ही शुरुआती रेखा निर्धारित करने के बावजूद, ऐसे मामलों में न्याय का मतलब होगा, लोगों को उनके प्रयास के पैमाने और अर्हता के अनुपात में पुरस्कृत करना। अधिकांश लोग सहमत होंगे, कि यूँ तो लोगों को समान काम का समान दाम मिलना चाहिए, लेकिन किसी काम के लिए वांछित मेहनत, कौशल, संभावित खतरे आदि कारकों को ध्यान में रखते हुए अलग-अलग काम के लिए अलग-अलग पारिश्रमिक का निर्धारण उचित और न्यायसंगत होगा। अगर हम इन मानदंडों का इस्तेमाल करें, तो हम पायेंगे कि हमारे समाज में कुछ कामगार तबकों को ऐसे कारकों के मद्देनजर निर्धारित पारिश्रमिक नहीं मिलता। उदाहरण के लिए खनिकों, कुशल कारीगरों अथवा पुलिस कर्मियों जैसे कभी-कभी खतरनाक, लेकिन सामाजिक रूप से उपयोगी पेशों में लगे लोगों को सदैव वह पारिश्रमिक नहीं मिलता, जो समाज में कुछ अन्य लोगों को होने वाली कमाई की तुलना में न्यायोचित हो। समाज में न्याय के लिए समान बरताव के सिद्धांत का समानुपातिकता के सिद्धांत के साथ संतुलन बिठाने की ज़रूरत है।

विशेष ज़रूरतों का विशेष ख्याल

न्याय के जिस तीसरे सिद्धांत को हम समाज के लिए मान्य करते हैं, वह पारिश्रमिक या कर्त्तव्यों का वितरण करते समय लोगों की विशेष ज़रूरतों का ख्याल रखने का सिद्धांत है। इसे सामाजिक न्याय को बढ़ावा देने का तरीका माना जा सकता है। समाज के सदस्यों के रूप में लोगों की बुनियादी हैसियत और अधिकारों के लिहाज से न्याय के लिए यह ज़रूरी हो सकता है, कि लोगों के साथ समान बरताव किया जाय। लेकिन, लोगों के बीच भेदभाव न करना और उनकी मेहनत के अनुपात में उन्हें पारिश्रमिक देना भी यह सुनिश्चित करने के लिए शायद पर्याप्त न हो, कि समाज में अपने जीवन के अन्य संदर्भों में भी लोग समानता का उपभोग करें या कि समाज समग्र रूप से न्यायपूर्ण हो जाए। लोगों की विशेष ज़रूरतों को ध्यान में रखने का सिद्धांत समान बरताव के सिद्धांत को अनिवार्यतया खंडित नहीं, बल्कि उसका विस्तार ही करता है क्योंकि समकक्षों के साथ समान बरताव के सिद्धांत में यह अंतर्निहित है, कि जो लोग कुछ महत्त्वपूर्ण संदर्भों में समान नहीं हैं, उनके साथ भिन्न ढंग से बरताव किया जाय।

विशेष ज़रूरतों या विकलांगता वाले लोगों को कुछ खास मामलों में असमान और विशेष सहायता के योग्य समझा जा सकता है। लेकिन इस पर सहमत होना हमेशा आसान नहीं होता, कि लोगों को विशेष सहायता देने के लिए उनकी किन असमानताओं को मान्यता दी जाय। शारीरिक विकलांगता, उम्र या अच्छी शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधाओं तक पहुँच न होना कुछ ऐसे कारक हैं, जिन्हें अनेक देशों में विशेष बरताव का आधार समझा जाता है। यह माना जाता, है कि जीवनयापन और अवसरों के बहुत ऊँचे स्तर का उपभोग करने वाले और उत्पादक जिंदगी जीने के लिए ज़रूरी न्यूनतम बुनियादी सुविधाओं से भी वंचित लोगों से हर मामले में बिल्कुल एक जैसा बरताव करने पर परिणाम समतावादी और न्यायपूर्ण नहीं बल्कि एक

सामाजिक न्याय

चितन-मंथन

नीचे दी गई स्थितियों की जाँच करें और बताएँ कि क्या वे न्यायसंगत हैं। अपने तर्क के साथ यह भी बताएँ कि प्रत्येक स्थिति में न्याय का कौन-सा सिद्धांत काम कर रहा है-

- ☐ एक दृष्टिहीन छात्र सुरेश को गणित का प्रश्न पत्र हल करने के लिए साढ़े तीन घंटे मिलते हैं, जबकि अन्य सभी छात्रों को केवल तीन घंटे।
- ☐ गीता बैसाखी की सहायता से चलती है। अध्यापिका ने गणित का प्रश्नपत्र हल करने के लिए उसे भी साढ़े तीन घंटे का समय देने का निश्चय किया।
- ☐ एक अध्यापक कक्षा के कमजोर छात्रों के मनोबल को उठाने के लिए कुछ अतिरिक्त अंक देते हैं।
- ☐ एक प्रोफ़ेसर अलग-अलग छात्राओं को उनकी क्षमताओं के मूल्यांकन के आधार पर अलग-अलग प्रश्नपत्र बाँटते हैं।
- ☐ संसद में एक प्रस्ताव विचाराधीन है कि, संसद की कुल सीटों में से एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित कर दी जाए।

असमान समाज होगा। हमारे देश में आमतौर पर देखा जाता है कि, अच्छी शिक्षा, स्वास्थ्य और ऐसी अन्य सुविधाओं तक पहुँच का अभाव जाति आधारित सामाजिक भेदभाव से जुड़ा है। इसीलिए संविधान में अनुसूचित जातियों और जनजातियों के लोगों के लिए सरकारी नौकरियों में तथा शैक्षणिक संस्थानों में दाखिले के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है।

न्याय के विभिन्न सिद्धांतों पर हमारी बहस ने यह संकेत दिया है कि सरकारें कभी-कभी न्याय के उपरोक्त तीन सिद्धांतों – समकक्षों के बीच समान बरताव, लोगों को मिलने वाले लाभों को तय करते समय विभिन्न प्रयास तथा कौशलों को मान्यता देना और ज़रूरतमंदों के लिए जीवन के न्यूनतम मानकों और अवसरों का प्रावधान – के बीच सामंजस्य बिठाने में कठिनाई महसूस कर सकती है। समान बरताव के सिद्धांत पर अमल कभी-कभी योग्यता को उचित प्रतिफल देने के खिलाफ खड़ा हो सकता है। योग्यता को पुरस्कृत करने को न्याय का प्रमुख सिद्धांत मानने पर जोर देने का अर्थ यह होगा कि हाशिये पर खड़े तबके कई क्षेत्रों में वंचित रह जायेंगे, क्योंकि अच्छे पोषाहार और अच्छी शिक्षा जैसी सुविधाओं तक उनकी पहुँच नहीं हो पाती है। देश के विभिन्न समूह, भिन्न-भिन्न नीतियों की तरफदारी कर सकते हैं, जो इस पर निर्भर करता है कि वे न्याय के किस सिद्धांत पर बल देते हैं। ऐसी स्थिति में सरकार की

सामाजिक न्याय
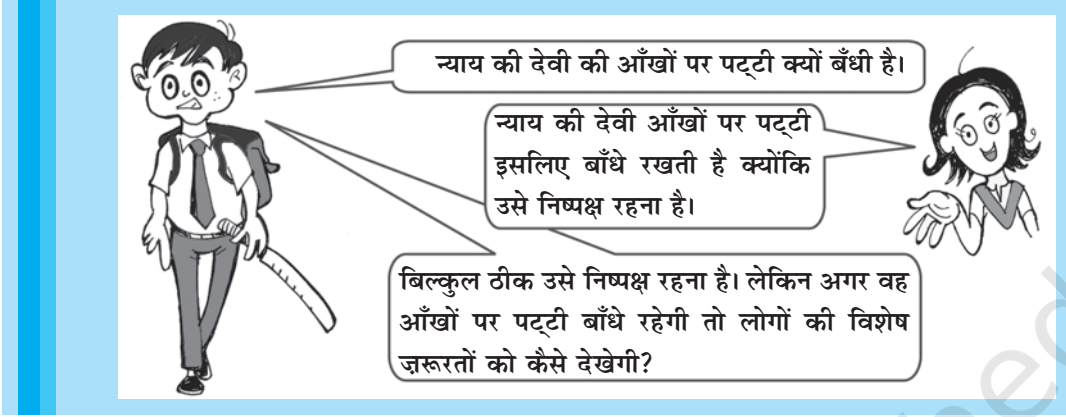
जिम्मेदारी बन जाती है कि वह एक न्यायपरक समाज को बढ़ावा देने के लिए न्याय के विभिन्न सिद्धांतों के बीच सामंजस्य स्थापित करें।

4.2 न्यायपूर्ण बंटवारा

समाज में सामाजिक न्याय पाने के लिए सरकारों को यह सुनिश्चित करना होता है कि कानून और नीतियाँ सभी व्यक्तियों पर निष्पक्ष रूप से लागू हों। लेकिन इतना ही काफी नहीं है और इससे कुछ ज़्यादा करने की आवश्यकता होती है। सामाजिक न्याय का सरोकार वस्तुओं और सेवाओं के न्यायोचित वितरण से भी है, चाहे यह राष्ट्रों के बीच वितरण का मामला हो या किसी समाज के अंदर विभिन्न समूहों और व्यक्तियों के बीच का। यदि समाज में गंभीर सामाजिक या आर्थिक असमानताएँ हैं, तो यह ज़रूरी होगा कि समाज के कुछ प्रमुख संसाधनों का पुनर्वितरण हो, जिससे नागरिकों को जीने के लिए समतल धरातल मिल सके। इसलिए किसी देश के अंदर सामाजिक न्याय के लिए यह ज़रूरी है, कि न केवल लोगों के साथ समाज के कानूनों और नीतियों के संदर्भ में समान बरताव किया जाय, बल्कि जीवन की स्थितियों और अवसरों के मामले में भी वे कुछ बुनियादी समानता का उपभोग करें। यह हर व्यक्ति के लिए ज़रूरी माना गया कि वह अपने उद्देश्यों के लिए प्रयास कर सके और स्वयं को अभिव्यक्त कर सके। उदाहरण के लिए हमारे देश में सामाजिक समानता को बढ़ावा देने के लिए संविधान ने छुआछूत की प्रथा का उन्मूलन किया और यह सुनिश्चित किया कि 'निचली' कही जाने वाली जातियों के लोगों को मंदिरों में प्रवेश, नौकरी और पानी जैसी बुनियादी ज़रूरतों से न रोका जा सके। विभिन्न राज्य सरकारों ने जमीन जैसे महत्त्वपूर्ण संसाधन के अधिक न्यायपूर्ण वितरण के लिए भूमि-सुधार लागू करने जैसे कदम भी उठाए हैं।

समाज में न्याय की स्थापना से जुड़े कुछ सवाल सामने खड़े हैं। क्या संसाधनों का वितरण और शिक्षा तथा नौकरियों तक समान पहुँच सुनिश्चित की जाए और यदि हाँ तो कैसे? ऐसे

सामाजिक न्याय

मामलों में मत-भिन्नता समाज में उग्र भावावेश पैदा करती हैं और कभी-कभी हिंसा भी भड़का देती हैं। लोग मानने लगते हैं कि उनके और उनके परिवारों का भविष्य दांव पर लग जायेगा। हमें क्रोध और हिंसा के ऐसे भी मामले याद हैं, जो कभी हमारे देश के शैक्षणिक संस्थानों में या सरकारी नौकरियों में सीट आरक्षण के प्रस्तावों से फूटते रहे हैं। बहरहाल, राजनीतिक सिद्धांत के विद्यार्थी होने के नाते न्याय के सिद्धांत की अपनी समझदारी के आलोक में हमें ठंडे दिमाग से इन मुद्‌दों की जाँच-परख करने में समर्थ होना चाहिए। क्या वंचितों की सहायता की योजनाएँ न्याय सिद्धांत की कसौटी पर खरी मानी जा सकती हैं? अगले खंड में हम सुप्रसिद्ध राजनीतिक दार्शनिक जॉन रॉल्स द्वारा प्रस्तुत न्यायोचित वितरण के सिद्धांत पर चर्चा करेंगे। रॉल्स ने तर्क दिया है कि समाज के न्यूनतम सुविधा प्राप्त सदस्यों को सहायता देने की ज़रूरत स्वीकार करने के लिए बेशक युक्तिसंगत औचित्य हो सकता है।

4.3 रॉल्स का न्याय सिद्धांत

यदि लोगों को कहा जाय कि आप रहने के लिए किस किस्म का समाज चुनना पसंद करेंगे, तो संभवत: वे ऐसा समाज चुनेंगे जिसके नियम और संगठन उन्हें विशेष सुविधासंपन्न स्थान मुहैया कर सकें। हम सब लोगों से अपेक्षा नहीं कर सकते कि वे अपने निजी हितों को दरकिनार कर समाज की भलाई के बारे में सोचें, खासकर तब जब उन्हें यह यकीन हो कि उनका फैसला भविष्य में उनके बच्चों को मिलने वाली जिंदगी और मौकों को प्रभावित करने जा रहा है। वस्तुत: हम माता-पिता से यह आशा करते हैं कि वे अपने बच्चों के लिए सबसे अच्छा क्या है— इसके बारे में सोचें और सहयोग दें। लेकिन ऐसे परिदृश्य किसी समाज के लिए न्याय के सिद्धांत की बुनियाद का निर्माण नहीं कर सकते। तो, हम ऐसे निर्णय पर कैसे पहुँचें जो निष्पक्ष हो और न्यायसंगत भी?

जॉन रॉल्स ने इस प्रश्न का उत्तर देने का प्रयास किया है। वह तर्क करते हैं कि निष्पक्ष और न्यायसंगत नियम तक पहुँचने का एकमात्र रास्ता यही है कि हम खुद को ऐसी परिस्थिति में होने की कल्पना करें जहाँ हमें यह निर्णय लेना है कि समाज को कैसे संगठित किया जाय। जबकि हमें यह ज्ञात नहीं है कि उस समाज में हमारी क्या जगह होगी। अर्थात् हम नहीं जानते कि किस किस्म के परिवार में हम जन्म लेंगे, हम 'उच्च' जाति के परिवार में पैदा होंगे या 'निम्न' जाति में, धनी होंगे या गरीब, सुविधा-संपन्न होंगे या सुविधाहीन। रॉल्स तर्क देते हैं कि अगर हमें यह नहीं मालूम हो, इस मायने में, कि हम कौन होंगे और भविष्य के समाज में हमारे लिए कौन से विकल्प खुले होंगे, तब हम भविष्य के उस समाज के नियमों और संगठन के बारे में जिस निर्णय का समर्थन करेंगे, वह तमाम सदस्यों के लिए अच्छा होगा।

रॉल्स ने इसे 'अज्ञानता के आवरण' में सोचना कहा है। वे आशा करते हैं कि समाज में अपने संभावित स्थान और हैसियत के बारे में पूर्ण अज्ञानता की हालत में हर आदमी, आमतौर पर जैसे सब करते हैं, अपने खुद के हितों को ध्यान में रखकर फ़ैसला करेगा। चूँकि कोई नहीं

सामाजिक न्याय

जानता कि वह कौन होगा और उसके लिए क्या लाभप्रद होगा, इसलिए हर कोई सबसे बुरी स्थिति के मद्देनज़र समाज की कल्पना करेगा। खुद के लिए सोच-विचार कर सकने वाले व्यक्ति के सामने यह स्पष्ट रहेगा कि जो जन्म से सुविधासंपन्न हैं, वे कुछ विशेष अवसरों का उपभोग करेंगे। लेकिन दुर्भाग्य से यदि उनका जन्म समाज के वंचित तबके में हो जहाँ वैसा कोई अवसर न मिले, तब क्या होगा? इसलिए, अपने स्वार्थ में काम करने वाले हर व्यक्ति के लिए यही उचित होगा कि वह संगठन के ऐसे नियमों के बारे में सोचे जो कमजोर तबके के लिए यथोचित अवसर सुनिश्चित कर सके। इस प्रयास से दिखेगा कि शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास जैसे महत्त्वपूर्ण संसाधन सभी लोगों को प्राप्त हों – चाहे वे उच्च वर्ग के हो या न हों।

बेशक, अपनी पहचान को विस्मृत करना और 'अज्ञानता के आवरण' में खड़ा होने की कल्पना करना किसी के लिए सहज नहीं है। लेकिन तब, अधिकांश लोगों के लिए यह भी उतना ही कठिन है कि वे आत्म-त्यागी बनें और अजनबी लोगों के साथ अपने सौभाग्य की हिस्सेदारी करें। यही कारण है कि हम आदतन आत्म-त्याग को वीरता से जोड़ते हैं। इन मानवीय दुर्बलताओं और सीमाओं के मद्देनजर हमारे लिए ऐसे ढाँचे के बारे में सोचना बेहतर होगा, जिसमें असाधारण कार्रवाइयों की ज़रूरत न रहे। 'अज्ञानता के आवरण' वाली स्थिति की विशेषता यह है कि उसमें लोगों से सामान्य रूप से विवेकशील मनुष्य बने रहने की उम्मीद बंधती है। उनसे अपने लिए सोचने और अपने हित में जो अच्छा हो, उसे चुनने की अपेक्षा रहती है। हालाँकि प्रासंगिक बात यह है कि जब वे 'अज्ञानता के आवरण' में रह कर चुनते हैं तो वे पायेंगे कि सबसे बुरी स्थिति से ही सोचना उनके लिए हितकर होगा।

सामाजिक न्याय

अज्ञानता का कल्पित आवरण ओढ़ना उचित कानूनों और नीतियों की प्रणाली तक पहुँचने का पहला कदम है। इससे यह प्रकट होगा कि विवेकशील मनुष्य न केवल सबसे बुरे संदर्भ के मद्देनजर चीज़ों को देखेंगे, बल्कि वे यह भी सुनिश्चित करने की कोशिश करेंगे कि उनके द्वारा निर्मित नीतियाँ समग्र समाज के लिए लाभप्रद हों। दोनों चीज़ों को साथ-साथ चलना है। चूँकि कोई नहीं जानता कि वे आगामी समाज में कौन-सी जगह लेंगे, इसलिए हर कोई ऐसे नियम चाहेगा जो, अगर वे सबसे बुरी स्थिति में जीने वालों के बीच पैदा हों, तब भी उनकी रक्षा कर सके। लेकिन उचित तो यही होगा कि वे यह भी सुनिश्चित करने की कोशिश करें, कि उनके द्वारा चुनी गई नीतियाँ बेहतर स्थिति वालों को कमजोर न बना दे, क्योंकि यह संभावना भी हो सकती है कि वे खुद भविष्य के उस समाज में सुविधा संपन्न स्थिति में पैदा हों। इसलिए यह सभी के हित में होगा कि निर्धारित नियमों और नीतियों से संपूर्ण समाज को फायदा होना चाहिए, किसी एक खास हिस्से का नहीं। यहाँ निष्पक्षता विवेकसम्मत कार्रवाई का परिणाम है, न कि परोपकार या उदारता का।

इसलिए रॉल्स तर्क देते हैं कि नैतिकता नहीं बल्कि विवेकशील चिंतन हमें समाज में लाभ और भार के वितरण के मामले में निष्पक्ष होकर विचार करने की ओर प्रेरित करता है। इस उदाहरण में हमारे पास पहले से बना-बनाया कोई लक्ष्य या नैतिकता के प्रतिमान नहीं होते हैं। हमारे लिए सबसे अच्छा क्या है, यह निर्धारित करने के लिए हम स्वतंत्र होते हैं। यही विश्वास रॉल्स के सिद्धांत को निष्पक्ष और न्याय के प्रश्न को हल करने का महत्त्वपूर्ण और सबल रास्ता बना देता है।

4.4 सामाजिक न्याय का अनुसरण

यदि किसी समाज में बेहिसाब धन-दौलत और इनके स्वामित्व के साथ जुड़ी सत्ता का उपभोग करने वालों तथा बहिष्कृतों और वंचितों के बीच गहरा एवं स्थायी विभाजन मौजूद है, तो हम कहेंगे कि वहाँ सामाजिक न्याय का अभाव है। हम यहाँ सिर्फ समाज में विभिन्न व्यक्तियों के जीवनयापन के सिर्फ विभिन्न स्तरों की चर्चा नहीं कर रहे हैं। न्याय के लिए लोगों के रहन-सहन के तौर-तरीकों में पूर्ण समानता और एकरूपता की आवश्यकता नहीं है। लेकिन उस समाज को अन्यायपूर्ण ही माना जायेगा, जहाँ धनी और गरीब के बीच खाई इतनी गहरी हो, कि वे बिल्कुल भिन्न-भिन्न दुनिया में रहने वाले लगें और जहाँ अपेक्षाकृत वंचितों को अपनी स्थिति सुधारने का कोई मौका न मिले, चाहे वे कितना भी कठिन श्रम क्यों न करें। दूसरे शब्दों में, न्यायपूर्ण समाज को लोगों के लिए न्यूनतम बुनियादी स्थितियाँ ज़रूर मुहैया करानी चाहिए, ताकि वे स्वस्थ और सुरक्षित जीवन जीने में सक्षम हो सकें, समाज में अपनी प्रतिभा का विकास करें तथा इसके साथ समान अवसरों के जरिये अपने चुने हुए लक्ष्य की ओर बढ़ें।

आओ कुछ करके सीखे

विभिन्न सरकारी और संयुक्त राष्ट्र संघ इकाइयों ने भोजन, आय और पानी जैसी सुविधाओं की न्यूनतम आवश्यकता की गणना की है। अपने स्कूल के पुस्तकालय या इंटरनेट से ऐसी गणनाओं की खोज करो।

सामाजिक न्याय

लोगों की जिंदगी के लिए ज़रूरी न्यूनतम बुनियादी स्थितियों का निर्धारण हम कैसे कर सकते हैं? विभिन्न सरकारों और विश्व स्वास्थ्य संगठन जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठनों ने लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं की गणना के लिए विभिन्न तरीके इजाद किये हैं। लेकिन सामान्यत: इस पर सहमति है कि स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक पोषक तत्त्वों की बुनियादी मात्रा, आवास, शुद्ध पेयजल की आपूर्ति, शिक्षा और न्यूनतम मज़दूरी इन बुनियादी स्थितियों के महत्त्वपूर्ण हिस्से होंगे। लोगों की बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति लोकतांत्रिक सरकार की जिम्मेदारी समझी जाती है। हालाँकि, सभी नागरिकों के लिए इन बुनियादी शर्तों की पूर्ति, खासकर भारत जैसे देश में जहाँ गरीबों की बड़ी तादाद है, सरकार पर भारी बोझ बन सकती है।

अगर हम सब इस बात पर सहमत भी हो जाएँ, कि राज्य को समाज के सबसे वंचित सदस्यों की मदद करनी चाहिए, जिससे वे बाकियों के साथ एक हद तक समानता का आनंद ले सकें, तब भी इस बात पर असहमति हो सकती है कि इस लक्ष्य को पाने का सर्वोत्तम तरीका क्या होगा। आजकल हमारे समाज में और दुनिया के अन्य हिस्सों में भी यह बहस चल रही है कि क्या मुक्त बाज़ार के जरिए खुली प्रतियोगिता को बढ़ावा देना समाज के सुविधाप्राप्त सदस्यों को नुकसान पहुँचाए बगैर सुविधाहीनों की मदद करने का सर्वोत्तम तरीका होगा या कि गरीबों को न्यूनतम बुनियादी सुविधाएँ मुहैया कराने की जिम्मेवारी सरकार को लेनी चाहिए। हमारे देश में इन भिन्न-भिन्न प्रस्तावों का विभिन्न राजनीतिक समूह समर्थन कर रहे हैं, जो ग्रामीण या शहरी गरीब जैसे सीमांत समूहों की आबादी की सहायता के लिए विभिन्न योजनाओं के तुलनात्मक गुण-दोष पर बहस करते हैं। इस खंड में हम संक्षेप में इस विवाद की परख करेंगे।

मुक्त बाज़ार बनाम राज्य का हस्तक्षेप

मुक्त बाज़ार के समर्थकों का मानना है कि जहाँ तक संभव हो, व्यक्तियों को संपत्ति अर्जित करने के लिए तथा मूल्य, मज़दूरी और मुनाफे के मामले में दूसरों के साथ अनुबंध और समझौतों में शामिल होने के लिए स्वतंत्र रहना चाहिए। उन्हें लाभ की

> न्यायपूर्ण समाज वह है, जिसमें परस्पर सम्मान की बढ़ती हुई भावना और अपमान की घटती हुई भावना मिलकर एक करुणा से भरे समाज का निर्माण करें।
>
> *डॉ. भीम राव अंबेदकर*

अधिकतम मात्रा हासिल करने हेतु एक दूसरे के साथ प्रतिद्वंद्विता करने की छूट होनी चाहिए। यह मुक्त बाज़ार का सरल चित्रण है। मुक्त बाज़ार के समर्थक मानते हैं कि अगर बाज़ारों को राज्य के हस्तक्षेप से मुक्त कर दिया जाय, तो बाज़ारी कारोबार का योग कुल मिलाकर समाज में लाभ और कर्त्तव्यों का न्यायपूर्ण वितरण सुनिश्चित कर देगा। इससे योग्यता और प्रतिभा से लैस लोगों को अधिक प्रतिफल मिलेगा जबकि अक्षम लोगों को कम हासिल होगा। उनकी मान्यता है कि बाज़ारी वितरण का जो भी परिणाम हो, वह न्यायसंगत होगा।

हालाँकि, मुक्त बाज़ार के सभी समर्थक आज पूर्णतया अप्रतिबंधित बाज़ार का समर्थन नहीं करेंगे। कई लोग अब कुछ प्रतिबंध स्वीकार करने को तैयार होंगे। मसलन सभी लोगों के लिए न्यूनतम बुनियादी जीवन-मानक सुनिश्चित करने हेतु राज्य हस्तक्षेप करे, ताकि वे समान शर्तों पर प्रतिस्पर्धा करने में समर्थ हो सकें। लेकिन वे तर्क कर सकते हैं, कि यहाँ भी स्वास्थ्य सेवा, शिक्षा तथा ऐसी अन्य सेवाओं के विकास के लिए बाज़ार को अनुमति देना ही लोगों के लिए इन बुनियादी सेवाओं की आपूर्ति का सबसे कारगर तरीका हो सकता है। दूसरे शब्दों में, ऐसी सेवाएँ मुहैया कराने के लिए निजी एजेंसियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जबकि राज्य की नीतियाँ इन सेवाओं को खरीदने के लिए लोगों को सशक्त बनाने की कोशिश करे। राज्य के लिए यह भी ज़रूरी हो सकता है, कि वह उन वृद्धों और रोगियों को विशेष सहायता प्रदान करें, जो प्रतिस्पर्द्धा नहीं कर सकते। लेकिन इसके आगे राज्य की भूमिका नियम-कानून का ढाँचा बरकरार रखने तक ही सीमित रहनी चाहिए, जिससे व्यक्तियों के बीच जबरदस्ती और अन्य बाधाओं से मुक्त प्रतिद्वंद्विता सुनिश्चित हो। उनका मानना है कि मुक्त बाज़ार उचित और न्यायपूर्ण समाज का आधार होता है। कहा जाता है कि बाज़ार किसी व्यक्ति की जाति या धर्म की परवाह नहीं करता। वह यह भी नहीं देखता कि आप मर्द हैं या औरत। वह इन सबसे निरपेक्ष रहता है और उसका सरोकार आपकी प्रतिभा और कौशल से है। अगर आपके पास योग्यता है तो बाकी सब बातें बेमानी हैं।

बाज़ारी वितरण के पक्ष में एक तर्क यह दिया जाता है, कि यह हमें ज़्यादा विकल्प प्रदान करता है। इसमें शक नहीं कि बाज़ार प्रणाली उपभोक्ता के तौर पर हमें ज़्यादा विकल्प देती है। हम जैसा चाहें वैसा चावल पसंद कर सकते हैं और पसंदीदा स्कूल जा सकते हैं, बशर्ते उनकी कीमत चुकाने के लिए हमारे पास साधन हों। लेकिन, बुनियादी वस्तुओं और सेवाओं के मामले में महत्त्वपूर्ण बात यह है, कि अच्छी गुणवत्ता की वस्तुएँ और सेवाएँ लोगों के खरीदने लायक कीमत पर उपलब्ध हों। यदि निजी एजेंसियाँ इसे अपने लिए लाभदायक नहीं पाती हैं, तो वे उस खास बाज़ार में प्रवेश नहीं करेंगी अथवा सस्ती और घटिया सेवाएँ मुहैया कराएँगी। यही वजह है कि सुदूर ग्रामीण इलाकों में बहुत कम निजी विद्यालय हैं और कुछ खुले भी हैं, तो वे निम्नस्तरीय हैं। स्वास्थ्य सेवा और आवास के मामले में भी सच यही है। इन परिस्थितियों में सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ता है।

सामाजिक न्याय

मुक्त बाज़ार और निजी उद्यम के पक्ष में अक्सर सुनने में आने वाला दूसरा तर्क यह है कि वे जो सेवाएँ मुहैया कराते हैं, उनकी गुणवत्ता सरकारी संस्थानों द्वारा प्रदत्त सेवाओं से प्राय: बेहतर होती है। लेकिन इन सेवाओं की कीमत उन्हें गरीब लोगों की पहुँच से बाहर कर दे सकती है। निजी व्यवसाय वहीं जाना चाहता है, जहाँ उसे सबसे ज़्यादा मुनाफा मिले और इसीलिए मुक्त बाज़ार ताकतवर, धनी और प्रभावशाली लोगों के हित में काम करने को प्रवृत्त होता है। इसका परिणाम अपेक्षाकृत कमज़ोर और सुविधाहीन लोगों के लिए अवसरों का विस्तार करने के बजाय अवसरों से वंचित करना हो सकता है।

तर्क तो बहस के दोनों पक्षों के लिए प्रस्तुत किए जा सकते हैं, लेकिन मुक्त बाज़ार आमतौर पर पहले से ही सुविधासंपन्न लोगों के हक में काम करने का रुझान दिखलाते हैं। इसी वजह से अनेक लोग तर्क करते हैं, कि सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने के लिए राज्य को यह सुनिश्चित करने की पहल करनी चाहिए, कि समाज के तमाम सदस्यों को बुनियादी सुविधाएँ उपलब्ध हों।

लोकतांत्रिक समाज में वितरण और न्याय के मुद्‌दों पर असहमतियाँ अपरिहार्य हैं और फ़ायदेमंद भी क्योंकि वे हमें विभिन्न दृष्टिकोणों की जाँच-परख करने और विवेकसम्मत ढंग से अपने विचारों का बचाव करने को बाध्य करती है। वाद-विवाद के जरिए इन असहमतियों के बीच राह निकालने का ही दूसरा नाम राजनीति है। हमारे अपने देश में अनेक किस्म की सामाजिक और आर्थिक विषमताएँ मौजूद हैं और उन्हें कम करने के लिए बहुत कुछ करना बाकी है। न्याय के विभिन्न सिद्धांतों के अध्ययन से हमें इसमें शामिल मुद्‌दों पर बहस करने तथा न्याय के अनुसरण के सर्वोत्तम रास्ते के बारे में एक सहमति पर पहुँचने में मदद मिलती है।

‘न्याय में ऐसा कुछ अंतर्निहित है जिसे करना न सिर्फ सही है और न करना सिर्फ गलत; बल्कि जिस पर बतौर अपने नैतिक अधिकार कोई व्यक्ति विशेष हमसे दावा जता सकता है।’

जे.एस. मिल

सामाजिक न्याय

प्रश्नावली

1. हर व्यक्ति को उसका प्राप्य देने का क्या मतलब है? हर किसी को उसका प्राप्य देने का मतलब समय के साथ-साथ कैसे बदला?
2. अध्याय में दिए गए न्याय के तीन सिद्धांतों की संक्षेप में चर्चा करो। प्रत्येक को उदाहरण के साथ समझाइये।
3. क्या विशेष ज़रूरतों का सिद्धांत सभी के साथ समान बरताव के सिद्धांत के विरूद्ध है?
4. निष्पक्ष और न्यायपूर्ण वितरण को युक्तिसंगत आधार पर सही ठहराया जा सकता है। रॉल्स ने इस तर्क को आगे बढ़ाने में 'अज्ञानता के आवरण' के विचार का उपयोग किस प्रकार किया।
5. आम तौर पर एक स्वस्थ और उत्पादक जीवन जीने के लिए व्यक्ति की न्यूनतम बुनियादी ज़रूरतें क्या मानी गई है? इस न्यूनतम को सुनिश्चित करने में सरकार की क्या जिम्मेदारी है?
6. सभी नागरिकों को जीवन की न्यूनतम बुनियादी स्थितियाँ उपलब्ध कराने के लिए राज्य की कार्यवाई को निम्न में से कौन-से तर्क से वाजिब ठहराया जा सकता है?
   (क) गरीब और ज़रूरतमदों को निशुल्क सेवाएँ देना एक धर्म कार्य के रूप में न्यायोचित है।
   (ख) सभी नागरिकों को जीवन का न्यूनतम बुनियादी स्तर उपलब्ध करवाना अवसरों की समानता सुनिश्चित करने का एक तरीका है।
   (ग) कुछ लोग प्राकृतिक रूप से आलसी होते हैं और हमें उनके प्रति दयालु होना चाहिए।
   (छ) सभी के लिए बुनियादी सुविधाएँ और न्यूनतम जीवन स्तर सुनिश्चित करना साझी मानवता और मानव अधिकारों की स्वीकृति है।

प्रारंभिक पृष्ट पर चित्र श्वेता राव